बदला

पल्लवी प्रसाद

बदला

वे फूल की तरह दो लड़कियाँ थीं। फूल की तरह ही क्यों? वे नाशपाती और गब्बु-गोशा की तरह भी तो हो सकती हैं। हाँ, यह सही है। नाशपाती और गब्बु-गोशा की तरह ही उनके नाम और मिजाज एक दूसरे से भिन्न थे। परंतु थीं वे बहनें - बिल्कुल सगी। वे एक बड़े शहर में रहती थीं। दोनों एक ही स्कूल में पढ़ा करतीं। उनका स्कूल मध्यम

वर्ग परिवारों के बच्चों का स्कूल था। इसलिए उसका स्थान उस शहर के स्कूलों में चौथे नंबर पर था। लड़कियों को इस बात की कोई परवाह नहीं थी। उनका स्कूल उनके लिए 'बेस्ट' था। बड़ी का नाम था गुरप्रीत और छोटी का नाम था हरप्रीत। ठीक अपने नामानुसार जहीन और संजीदा गुरप्रीत अपने शिक्षकों की प्यारी थी तथा गोल गालों वाली मासूम हरप्रीत हरदिलअजीज थी। दोनों बहनों की उम्र में छ साल का फर्क था। स्कूल का सालाना परीक्षा-फल निकल चुका था। गुरप्रीत दसवीं पास कर ग्यारहवीं में आ गई है वहीं हरप्रीत अब पाँचवी कक्षा में पढ़ेगी। लेकिन अभी गरमी की छुट्टियाँ शेष नहीं हुईं व उनके स्कूल खुलने में अभी और पंद्रह दिन का वक्त है।

गरमी है कि परवान चढ़ते ही जाती है। यदि ऐसा हो सकता है तो जरूर होगा कि बच्चियाँ छुट्टियों से उकता गई हैं। दिन भर चलती लू में बाहर न निकलने की उन्हें सख्त ताकीद है। आखिर सारा-सारा दिन कोई कितनी ड्रॉइंग बना सकता है? फिर फैले हुए रंग-पानी, कागज के टुकड़ों की सफाई किसके जिम्मे हो यह ले कर उनमें अक्सर झगड़ा छिड़ जाता जिसका फैसला एक दूसरे की ड्रॉइंग को फाड़ कर किया जाता और फिर कई घंटों तक दोनों का मूड खराब रहता। उन्हें अब टी.वी. बेमजा लगता। रोज नई कॉमिक्स भी नहीं खरीदी जा सकतीं, वे इतनी महँगी जो होती हैं! पुरानी कॉमिक्स मानो उन्हें कंठस्थ हो गई हैं। हर शाम धूप के उतरते ही उनके घर के पीछे के मैदान में आस-पास के मुहल्लों से हर उम्र के लड़के खेलने के लिए जमा होते हैं ...क्रिकेट...फुटबॉल...। फुटबॉल सर्वप्रिय खेल है। उसमें झगड़ा जो नहीं होता और न ही किसी प्रकार का भेदभाव। खिड़की की जाली के पार अपनी छोटी सी गुलाबी नाक घुसेड़े हरप्रीत रोजाना, घंटों उन लड़कों के खेल देखती है।

उसके मन में उनके संग खेलने की जो उत्कट लालसा है वह उनका दर्शक बनने से शमित नहीं होती बल्कि लड़कों को चीखते, छोटी-बड़ी गेंदों का पीछा करते या चोट खा कर गिरते देख वह और प्रज्वलित हो उठती है। परंतु उनके संग मैदान में जा कर खेलने की उसे अनुमति नहीं। न जाने क्यों बढ़ती हुई लड़कियाँ इस तरह खेला नहीं करतीं? गुरप्रीत बड़ी है। वह किशोरी है। वह कभी अपने ही घर के दरवाजे के बाहर खड़ी हो कर पड़ोस की सहेली से बात कर लेती है। सहेली थोड़ी फैशनेबल है। बात फैशन से हट कर जल्द ही लड़कों पर टिक जाती। वह कुछ तो गुरप्रीत के समझ आती

और बहुत कुछ समझ से फिसल जाती - पापा को छोड़ कर उनके यहाँ कोई लड़का भी तो नहीं। कभी वहाँ से गुजरती हुई मम्मी को उनकी बातों की भनक लग जाती और वे उन्हें झिड़क देतीं, "क्या जनानियों की तरह कानाफूसी किया करती हो? खेलतीं क्यों नहीं?" - तब गुरप्रीत भौंचक्क देखती ही रह जाती। वह समझ न पाती वह क्या करे, क्या न करे? पापा का कपड़ों का कारोबार और मम्मी के घर-बाहर की व्यस्तताओं में बच्चियों को कौन पूछता। दुकान बंद करने की असमर्थता के चलते पापा उन्हें शहर से बाहर कहीं घुमाने भी नहीं ले जाते। ऐसे में छुट्टियाँ उन्हें राक्षस की मूँछ समान लंबी प्रतीत होने लगीं। इस से तो भला है कि उनका स्कूल ही खुल जाए!

...आसमान को छूते सफेदा के आज्ञाकारी पेड़। वे सड़क के दोनों तरफ हाथ बाँधे राहगीरों की हुक्म-तामील को खड़े हैं। जरा सी हवा में भी मानो झूल कर पूछते हैं, "जी, हुजूर?" - गुरप्रीत और हरप्रीत गाड़ियों से बचती हुईं सड़क के किनारे-किनारे चल रही हैं। दुनिया की तमाम सड़कों की तरह ही इस सड़क के भी आदि-अंत के बारे में ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। यह बच्चियों को उनके स्कूल ले जाती है और स्कूल से घर लौटाती है। यह कभी भी, चारों मौसम में बदलती नहीं। इस तरह सड़क कोई 'कन्फ्यूजन' नहीं पैदा करती। आजकल यह बात कम ही चीजों के लिए कही जा सकती है। तो चलते हुए बच्चियाँ वहाँ पहुँची जहाँ से सड़क पर फ्लाई ओवर शुरू होता है। तेज-गति वाहन "स्सांय...!" से उनके सिर के ऊपर चढ़े जा रहे हैं किंतु फ्लाई ओवर के नीचे सामने की सड़क खाली है। बच्चियों की बँधी मुट्ठियाँ ढीली पड़ गईं। राहत ने उनके फेफड़ों में ज्यादा ऑक्सीजन भरी... हरप्रीत उछलती-कूदती चलने लगी। बड़ी बहन गुरप्रीत उसे देख मुस्कुराने लगी। उसके हाथ बार-बार पहनी हुई काली जीन्स की जेब को टटोल रहे हैं। हर तसल्ली पर वह नए से मुस्कुरा पड़ती है। आज उसकी जेब में रुपये हैं... सौ-पचास नहीं। पूरे साढ़े तीन हजार! उसने खुद एक-एक नोट छू कर तीन बार गिने हैं। वह बार बार अपनी जेब छूती है कि कहीं वे ऊपर से न उड़ जाएँ या उसकी जेब फटे और वे नीचे न गिर जाएँ। रुपये महफूज हैं।

वे उसे मम्मी ने दिए हैं, स्कूल के नए साल की नई किताबों के सेट खरीदने के लिए - एक सेट ग्यारहवीं कक्षा का और एक पाँचवी कक्षा का। किताबें स्कूल के बुक सेलर के पास उपलब्ध हैं और इसी कारण दोनों बहनें स्कूल जा रही हैं। उनकी कक्षाएँ तीन दिन

बाद शुरू होंगी। स्कूल फ्लाई ओवर के दूसरी तरफ पड़ता है और वे जल्द ही फ्लाई ओवर के नीचे से होती हुईं वाहनों से खाली सड़क पार कर लेंगी, बिल्कुल निःशंक। अभी वे इस तरफ चल रही हैं जहाँ शहर का सबसे पुराना और बड़ा नामचीन कॉलेज है। कॉलेज के गेट के ठीक सामने फ्लाई ओवर की दीवार की ऊँचाई पर, छुट्टियाँ शुरू होने से पहले ही कोई काले पेंट से मोटे-मोटे बड़े अक्षरों में लिख गया था, 'आई लव यू रूबी'। अब इस लिखित घोषणा पर कालिख पुतवा दी गई है लेकिन वह बात अब भी साफ-साफ पढ़ी जा सकती है। फ्लाई ओवर के नीचे से स्कूल की तरफ सड़क पार करते हुए छोटी हरप्रीत की आँखें पलट-पलट कर कुछ दूर खड़े गोल-गप्पे के ठेले को नाप रही हैं किंतु गुरप्रीत के मुख पर से स्मिति गायब है। वह खामोश, निगाहें झुकाए चल रही है। उसके मन में भुकभुकाती हुई लौ की तरह खयाल काँप रहे हैं - रूबी के साथ ऐसा किसने किया होगा? वह उसका दुश्मन ही रहा होगा या प्रेमी? ...आते-जाते पूरा शहर यह पढ़ता है, कॉलेज प्रिंसिपल, प्राध्यापक, लड़के-लड़कियाँ, रूबी के परिवारवाले, उसके पड़ोसी... रूबी कितनों का सामना करती होगी? या उसने पढ़ाई छोड़ दी है? पूरे कॉलेज में क्या एक ही रूबी होगी... अनेक भी तो हो सकती हैं। हाँ, और नहीं तो क्या! यह सोच कर गुरप्रीत की घबराहट कुछ कम हुई। उनका स्कूल आ गया। उसने एक बार फिर अपनी जेब टटोली।

बुक सेलर की दुकान के कांउटर पर से जब दोनों बच्चियाँ पलटीं तब गुरप्रीत की जेब अधिकांश रुपयों से खाली हो चली थी। उसके मन पर रुपये सँभालने का जो तनाव था वह भी हल्का हो गया था। लेकिन अब उस से कई गुना ज्यादा भार बहनों के कोमल हाथों में समा गया था। तमाम विषयों की पाठ्य पुस्तकें, हर विषय के लिए दो नोट बुक - एक कक्षा कार्य और दूसरी गृह कार्य के लिए। प्रत्येक विषय की जुदा वर्क बुक, भाषाओं की व्याकरण किताब, मैप बुक, ग्राफ बुक, ड्रॉइंग बुक, स्क्रैप बुक ...जिनमें से कई पर टीचर ही काम न करवा पाती लेकिन विद्यार्थियों को अनिवार्य था कि वे उन्हें खरीदें। गुरप्रीत ने छोटी हरप्रीत को उसकी किताबों के सेट से भरा सफेद पॉलीथीन का विशाल झोला पकड़ाया तो वह बेचारी लड़खड़ा गई। बड़ी बहन ने छोटी को निर्देश दिया, "दूसरे हाथ से झोले को नीचे से सहारा दो वरना यह फट जा सकता है।" छोटी ने अपनी मुंडी हिलाई और आज्ञा का पालन किया। बड़ी ने अब अपनी किताबों का भारी सेट एक हाथ से सँभाला। दूसरे हाथ को कोहनी से मोड़ कर अपनी कलाई से उसने

पहले हाथ में थामे झोले को नीचे से सहारा दिया। ऐसा उसे इसलिए करना पड़ा क्योंकि उसने दूसरे हाथ कि उँगलियों में एक हल्का झोला लटकाया हुआ था जिसमें खरीदी हुई तमाम किताबों पर जिल्द सजाने के लिए कवर के कई गोले, लेबल के कई-कई पत्ते, पेन-पेंसिल, कंपास बॉक्स, रंग, गोंद, टेप, कैंची जैसी नाना प्रकार की वस्तुएँ भरी थीं। यानी दोनों लड़कियाँ साल भर का स्कूली बोझ ढो कर, अपने घर को चलीं। गुरप्रीत की जेब में अब भी कुछ सौ की नोट और खुले रुपये पड़े थे। परंतु उसे उनकी लेश मात्र परवाह न रही थी कि वे हवा में उड़ जाएँगे या जेब से गिर जाएँगे। उसका पूरा ध्यान अब किताबों की सेट पर था, किताबें हवा में न उड़ पातीं लेकिन यह मानो तय जान पड़ता था कि वे किसी भी क्षण झोलों की तल को फाड़ते हुए भरभरा कर जमीन पर ढेर हो जाएँगी। गुरप्रीत को खासतौर से हरप्रीत पर बिल्कुल भरोसा नहीं था। छोटी ने किताबें गिर-गिरा दीं तब भी सरे राह तमाशा बड़ी का ही बनना था। इस भय से बड़ी, छोटी को डाँटते-फटकारते चलने लगी।

बेबात डाँटने-फटकारने का जो असर डाँटने-फटकारने वाले पर तथा डाँटे-फटकारे जाने वाले पर होता है, वही दोनों पर हुआ... यानी दोनों का मूड भारी रूप से खराब! जिस इमारत के बाहर वे निकलीं उस से स्कूल के बाहरी गेट का फासला बहुत ज्यादा लंबा है। पहले पार्किंग लॉट पार करना होता है, फिर बोगनबेलिया से लदे स्टाफ क्वार्टर्स, फिर आती है पॉलिटेक्निक की भीतरी सड़क, फिर आएगा गुलाबों से घिरा लॉन वाला विशाल बगीचा, पुनः पॉलिटेक्निक का पार्किंग लॉट ...और तब जा कर कहीं आएगा स्कूल का फाटक! दिन का एक बजे का वक्त है। सूरज आसमान से धरती की ओर आग के रेले छोड़ रहा है। लॉन की घास जगह-जगह से झुलस कर पीली पड़ रही है, देसी खुशबूदार गुलाब के पौधे सूखी झाड़ियाँ बन कर रह गए हैं। निःसंदेह यह माली के परीक्षा के दिन हैं। तपती हुई सड़क पर बहनें अपना-अपना बोझ उठाए भारी कदमों से बढ़ी जा रही हैं। माथे और गर्दन पर से अनवरत चुहचुहाता पसीना उनकी पीठ की घमौरियों को जला रहा है। उनकी साँसें फूल रही हैं, चेहरा लाल भभूका हो गया है। झोला उठाने से उनकी पसीने भरी हथेलियाँ दर्द से तड़-तड़ा रही हैं। ओफ्फ... वे किस पचड़े में पड़ गईं? अभी तो स्कूल का फाटक ही दूर है तिस पर घर तक का रास्ता और! स्कूल-कॉलेज के छुट्टी के दिनों में सवारी मिलने की कोई गुंजाइश नहीं, ऐसे में भला फ्लाई ओवर के नीचे सवारी वालों को कौन ग्राहक मिलेगा

जो वे इधर खड़े रहें? हरप्रीत की हर रोनी ठुनक पर गुरप्रीत के जबड़े भिंच जाते। हर बूँद ताकत महत्व रखती थी वरना वह छोटी को जरूर पीट देती।

स्कूल का ऊँचा और चौड़ा फाटक आ गया। यह क्या! सामने ही फ्लाई ओवर की छाँव में दुबका एक पुराना सायकल-रिक्शा सुस्ता रहा है। उसका मालिक पिछली सीट पर गुड़-मुड़ाया लेटा ऊँघ रहा है। इस अप्रत्याशित दृश्य को देख, दोनों बहनें किलक उठीं। वे बची-खुची शक्ति जोड़ कर जल्दी-जल्दी चलने लगीं। वे डर रही थीं कि कहीं कोई अन्य उनसे पहले रिक्शा वाले के पास न पहुँच जाए हालाँकि इसकी संभावना न के बराबर थी। रिक्शा के पास बढ़ते हुए वे असमंजस में पड़ गईं। इतना गंदा रिक्शा? उन्हें याद न आया पिछली बार वे कब किसी रिक्शा पर बैठीं थीं। हरप्रीत तो अवश्य ही कभी न बैठी होगी। उनकी आहट पा कर ऊँघता हुआ रिक्शा वाला उठ बैठा। उसने उन्हें भावहीन नजरों से देखा। वह एक मैला-कुचैला सा बूढ़ा था। उसके शरीर पर पूरे कपड़े भी न थे। जो थे उन्हें गुदड़ी कहना सही होगा। जीवन भर की मशक्कत ने बूढ़े की टाँगों को टेढ़ा कर दिया था। उसकी देह पर चिड़िया बराबर भी मांस न था, वह तो बस एक चमड़ा चढ़ा कंकाल था। बूढ़े की तरह ही उसके रिक्शे की गुरबत का भी पारावार न था। उसकी रंग उड़ी सीट टेढ़ी धँसी हुई तथा जगह-जगह से फटी-नुची हुई थी, छज्जे की कमानी टूट गई थी, रिक्शा डगमगाता सा था। गुरप्रीत सोच में पड़ गई। उसने छोटी को देखा, उसकी आँखों में याचना देखी। छोटी की क्या बात, किताबें उठा कर वह खुद चार कदम चलने की हालत में नहीं थी। गुरप्रीत ने अपना पता बता कर बूढ़े से पूछा, "हमें ले जाने का क्या लोगे?" बूढ़ा बोला, "बीस रुपये।" लेकिन गुरप्रीत को यह 'तीस' सुनाई दिया। उसने कहा, "नहीं-नहीं तीस तो बहुत होते हैं। बीस का रेट है, हम बीस देंगे।" बूढ़े की भावशून्य आँखें झपकीं, वह दुहराया, "बीस रुपये।" अब गुरप्रीत को शुबहा हुआ कि उस से कोई गफलत हुई है।

बात पक्की ठहराने के लिए उसने जोर दे कर कहा, "बीस लेना।" बूढ़ा खामोश रहा, उसने अपनी रिक्शा का रुख सीधा किया और लड़कियों के बैठने का इंतजार करने लगा। उसी पल लड़कियों का ध्यान कुछ दूरी पर फ्लाई ओवर के अगले स्तंभ की ओट में खड़े गन्ने के रस के ठेले पर गया। वे अपना भारी सामान रिक्शा पर लाद चुकी थीं। गरमी, मेहनत और बहते पसीने के मारे उन्हें बड़ी जोर की प्यास लग आई थी।

"भट्-भट्-भट्-भट्..." खाली चलती हुई गन्ने के रस की मशीन के स्वर ने उसे कई गुना भड़का दिया। दोनों बहनें एक दूसरे को देख कर हँसीं फिर हुलस कर रस के ठेले के दिशा में बढ़ीं। रिक्शा वाला बिना कुछ बताए समझ गया। वह किताबों-लदा रिक्शा हाथ से खींचते हुए उनके साथ चल दिया। उनको अपनी ओर आता देख कर रस वाला मुस्तैद हो गया। वह पुराना था और गरमियों में वर्षों से उसी स्थान पर अपना ठेला खड़ा करते आ रहा था। उसने गन्ने की सोंटियाँ निकालीं और उन्हें चलती मशीन में ठूँसने लगा। छन्नी लगी देगची में सुनहरे रस का फेनदार प्रपात हुआ। जब गन्ने वाले ने वही गन्ना दुहरा कर मशीन में घुसाया तब गुरप्रीत ने कुछ सोच कर कहा, "भइया दो नहीं, तीन गिलास देना। एक इन्हें भी।" उसने रिक्शावाले की तरफ इशारा किया। कहना गलत न होगा कि वह मन में कुछ अफसोस के साथ 'बीस से तीस' का हिसाब लगा चुकी थी फिर भी उसे लगा कि बूढ़े को रस पिलाना चाहिए। उसने बूढ़े की तरफ देखा। वह यह बात सुन-समझ कर भी निर्विकार खड़ा था। उसके चेहरे पर कृतज्ञता का निशान न था। बच्ची को यह उम्मीद न थी। उसने अपनी कृपा का सिला न पा कर किंचित हताशा जरूर महसूस की होगी।

रसवाले ने बर्फ के टुकड़ों डले, रस से लबालब भरे काँच के दो गिलास बच्चियों की ओर बढ़ाए। वे उन्होंने ले लिए। फिर उसने वैसा ही एक गिलास बूढ़े रिक्शावाले को थमाया, वह उसने ले लिया। थोड़ी देर में बच्चियों ने अपने गिलास खाली कर, ठेले की मेज पर रख दिए और गुरप्रीत ने रसवाले को तीन गिलास रस के हिसाब से तीस रुपये थमाये। रसवाले ने मुस्कुरा कर रुपये अपने पास रख लिए। तभी रिक्शावाले ने अपने गिलास का रस खत्म कर, उसे उन दो खाली गिलासों के पास रख दिया। वे लोग रिक्शा के तरफ मुड़े ही थे कि न जाने उस पल कैसी अनहोनी घटी? - रसवाला एकदम से दहाड़ा, "साला, साहब हो गया तू! ये तेरे गिलास रखने की जगह है भैण...?" उसने दन्न से गाली दी। बच्चियाँ सकपका कर खड़ी रह गईं। बूढ़ा रिक्शावाला आँखें झुकाए अपने टेढ़े पैरों पर चलता हुआ गया और उसने अपना गिलास उठा कर पानी गिरने से गीली हो आई जमीन पर उतार दिया। वह उठने को ही था कि रसवाले ने उसे फिर गालियों से नवाजा, "...तेरा जूठा गिलास कौन धोएगा बे?" रिक्शा वाले ने फिर से अपना गिलास उठा लिया और रसवाले के दिखाए पीपे से पानी ले कर उसे धोने लगा। दोनों

बहनें अवाक देखते रहीं, उन्हें यह बात बहुत नागवार गुजरी। बूढ़े की कोई गलती न थी। उन्होंने बूढ़े रिक्शावाले के रस के पैसे दिए थे।

इस तरह बूढ़ा उनका मेहमान हुआ। रसवाला सरासर बदतमीजी कर रहा है। उन्हें बूढ़े के सम्मान की रक्षा करनी चाहिए। परंतु कैसे...? छोटी अपने से बड़ी का मुँह ताक रही थी कि बहन जरूर कुछ करेगी या कहेगी लेकिन बड़ी की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे? समझ में न आने वाली गालियाँ सुन कर वह सहम गई है। यह अधेड़-उम्र, चौड़ी शक्ल और मूँछों वाला आदमी जो अक्सर आसमानी रंग का पुराना पठानी सूट और एक मोहक मुस्कान पहने रहता है, जिसे उन्होंने कभी विनम्रता से डिगते नहीं देखा, उसका यह खौफनाक रूप? गुरप्रीत ने कई बार रसवाले को टोकने के लिए मन में कहने की बात सोची लेकिन हर बार उसकी हिम्मत जवाब दे गई। वह खड़ी देखती ही रह गई। रसवाले ने डाँट कर बूढ़े से लड़कियों के गिलास भी धुलवाए। लड़कियों के सिर झुक गए। बूढ़ा वैसी ही भावशून्यता से हाथ चला रहा था मानो यह प्रकरण निबटे तो वह रिक्शा पर लौटे। जैसे भावशून्यता ही उसकी गुरबत का कवच हो। लड़कियाँ भारी कदमों से चलती हुईं रिक्शे पर चढ़ कर बैठ गईं...।

स्कूल को खुले बहुत दिन हो चले हैं। जैसा कि स्कूलों में होता है, हर सुबह असंख्य तादाद में बच्चे वहाँ हाजिर होते हैं। हर उम्र, बड़ाई और छोटाई के लड़के-लड़कियाँ... हर सुबह वे नए-पुराने, धुले, कलफ-प्रेस लगी वर्दियाँ पहन कर स्कूल आते हैं जो छुट्टी की घंटी बजने से काफी पहले ही पसीने और धूल से तरबतर हो कर गंदी हो जाती हैं। प्रत्येक कमरे में लगभग पचास बच्चे बैठते हैं, उनकी देह उमस से छीजती रहती है। स्कूल में ऐसे कई-कई कमरे हैं, तब सब कमरों में कितने बच्चे होंगे? वे पढ़ते हैं, खेलते हैं, लड़ते हैं, सजा भी पाते हैं। स्कूल की छुट्टी होने पर इन लड़के-लड़कियों का हुजूम रसवाले के ठेले पर मानों टूट पड़ता है। कई बच्चे अपना गला तर किए बगैर घर जाने वाली बस या ऑटो पर नहीं चढ़ना चाहते, वे अपनी सायकल या स्कूटर को आगे ही नहीं बढ़ाना चाहते। बहनें गुरप्रीत और हरप्रीत इन सबसे अलग हैं। पास ही रहने वाले बच्चों की तरह वे दोनों भी धूप में पैदल अपने घर लौटती हैं। ठंडे मीठे रस को पीने की कल्पना उन्हें लुभाती है। उनकी सहेलियाँ रुक जाती हैं परंतु वे कभी नहीं ठिठकतीं। प्यास उन्हें भी लगती है, दोनों के कंठ सूख रहे होते हैं। लेकिन वे रस के ठेले

की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखतीं हैं। हू-हू कर दोपहर की लू धूल के बगुले उड़ाती है। ऐसे में दो प्यास की पुतलियाँ चलती रहती हैं, उनके पीछे उनकी अनमनी छाया सड़क पर घिसटती जाती है...। वह बूढ़ा रिक्शावाला जिसकी गुरबत का पारावार नहीं, कभी नहीं जान पाएगा कि लड़कियाँ उसके अपमान का बदला लेती हैं, रोज।